ISSN 2454-2725
www.jankritipatrika.in

त्रिलोचन के काव्य में आर्थिक चिन्तन का स्वरूप

– डॉ.सुभाष चन्द्र पाण्डेय

त्रिलोचन एक जनवादी कवि हैं। जनवादी कवि महज वही नहीं होता जो जनपक्षधरता की हिमायत करता है, जनता की भाषा में जनता के लिए साहित्य सृजित करता है, उनके सुखात्मक एवं दुखात्मक नाना रूपों की अभिव्यक्ति करता है बल्कि वह भी हुआ करता है जो जनता का शोषण करने वाली पूँजीवादी मानसिकता के वास्तविक निहितार्थों को, उनके शोषण चक्र को परत दर परत उघारकर, उनके वास्तविक स्वरूप को जनता के समक्ष प्रस्तुत करता है। उसके छद्म नकाब के आवरण को उतार कर उनका असली चेहरा जनता के समक्ष प्रस्तुत करता है। त्रिलोचन ऐसे ही जनवादी कवि हैं जिन्हें जनता का शोषण करने वाली सारी शक्तियों की गहरी पहचान है। उनके ग्राम्य चित्रण में ही उनकी सजग आर्थिक संचेतना भी अभिव्यक्ति का स्वरूप ग्रहण करती रही है।

त्रिलोचन की कविताओं में आत्मपरकता आद्यन्त विद्यमान रही है और यह एकांगी या एकपक्षीय न होकर बहुपक्षीय है। जब कभी वे अपने समाज की उठने वाली ध्वनियों को ग्रहण कर रहे होते हैं तो उन्हें खेतों में पानी दे रहे किसान दम्पति की याद आती है जिसकी उद्यमषीलता के वे कायल हैं। ईख छोलते उन लोगों की याद आती हैं जिनकी उंगलियाँ ठंड से कठुआ गई हैं फिर भी कर्मरत हैं, और याद आती है उस भगत नगई महरा की जो हाथ जोड़े खड़ा हुआ है पंचायत के सामने जो इस बात से धन्य हुआ है कि 'जाति गंगा ने मुझे पावन कर दिया।'[1] किन्तु त्रिलोचन इससे भलीभॉति परिचित हैं कि जिन विचारों को या जिस महत्कार्य को वे श्रेयस्कर मानकर चल रहे हैं उन पर अमल करने वालों की संख्या कम होती जा रही है। 'अब समाज में/वे विचार रह गए नहीं हैं जिनको ढोता/ चला आ रहा वह'।[2]

त्रिलोचन आज की अर्थ विभीषिका पर बार बार गंभीर चिंतन करते नजर आते हैं उन्हें यह पूर्णतया ज्ञात है कि जब तक समाज में पूँजीवादी और मजदूर जैसे असमान वर्ग रहेंगे तब तक समाज में शोषक वर्ग शोषितों पर अत्याचार करता रहेगा और जन सामान्य को भीषण यातनाएं सहनी पड़ेंगी। वे इस विषम व्यवस्था के सम होने की अभिलाषा करते हुए कहते हैं– ''विषम समाज व्यवस्था सम जब दिखलायेगा/तभी तभी संतोष इस हृदय में आयेगा।''[3]

ISSN 2454-2725 www.jankritipatrika.in
जनकृति अंतरराष्ट्रीय पत्रिका/ Jankriti International Magazine (बहुभाषी अंतरराष्ट्रीय मासिक पत्रिका/Multilingual International Monthly Magazine)

ISSN 2454-2725
www.jankritipatrika.in

त्रिलोचन व्यक्ति को कुछ न कुछ कार्य करते रहने की प्रेरणा अपनी सभी रचनाओं में निरन्तर देते रहते हैं इसकी एक वजह तो उनका स्वयं का महान कर्मषील होना तो है ही किन्तु इसके साथ ही साथ वे अर्थ की महत्ता से भी खूब परिचित हैं। उनका अपार अनुभव यह बात कितनी सरलता से कहता है ''काम उसका नहीं अटकता है। जिसकी अंटी में दाम होता है।''[4]

बिना पैसे के काम कैसे चलता है खुद कवि त्रिलोचन के मुख से यह बात सुनिए जिनका सम्पूर्ण जीवन ही कर्मषीलता का महाकाव्य है–''पूरे दिन मषीन पर खटना/बासे पर आकर पड़ जाना और कमाई/का हिसाब जोड़ना बराबर चित्त उचटना''[5]

घर गृहस्थी चलाने की तो बात छोड़िए नून, तेल, लकड़ी का काम भी बिना पैसे के कहाँ संभव है। कवि त्रिलोचन अपनी कविता में जब 'कलकत्ते पर बजर गिरे'[6] जैसे वाक्य का प्रयोग करते हैं तो वह सायास ही करते हैं। वस्तुतः वह पूँजीपतियों के हित साधक इन कलकत्ते जैसे नगरों को जहाँ पर जन सामान्य का अधिकतम शोषण हो रहा है उसे नष्ट करने की आकांक्षा रखते हैं।त्रिलोचन उस जनपद के कवि हैं जो भूखा दूखा है। उनकी यह स्वीकारोक्ति उन्हें समाज के सुविधाविहीन वर्ग से आत्मीय स्तर पर जोड़ती है। मानवीय जीवन से अपना खास सम्बन्ध त्रिलोचन की कविताओं में आद्यन्त रहा है। मैनेजर पाण्डेय के शब्दों में–'त्रिलोचन घटनाओं के कवि नहीं हैं, वे मूल्यों के कवि हैं, उनकी रचनाओं में सामाजिक–राजनीतिक घटनाओं का चित्रण–वर्णन बहुत कम है, मानवीय जीवन की दषाओं और अनुभवों की अभिव्यक्ति अधिक है। वे मानवीय अनुभवों और जीवन–दषाओं की अभिव्यक्ति करते हुए संघर्ष, आस्था, जिजीविषा, प्रेम, न्याय और स्वतंत्रता जैसे जीवन–मूल्यों की व्यंजना करते हैं।''[7] यह सही भी है कि उनकी कविता निराला की कविता की ही भाँति मानवीय मूल्यों से ओत–प्रोत दिखती है दीन जन से उनका स्नेह देखते ही बनता है। जन सामान्य के सन्दर्भ में वे दैव से ही साक्षात्कार करते दिखते हैं–''खोट है दीन में त्रिलोचन क्या/ दैव क्यों उससे वाम होता है।''[8]

त्रिलोचन जन सामान्य का हाथ पकड़े हुए उन्हें यथासंभव सहायता प्रदान कर रहे होते हैं और ''चुन चुनकर तिनके तोड़े/चिन्ताओं के/''[9] तथा उन्हें जीवन के मधुमय गाने देते हैं– ''अपने जैसे जीते/जीर्णषीर्ण मिलते हैं/मैं उनका कर थामे/देता हूँ जीवन/जीवन के मधुमय गाने''[10] ऐसे मानवीय चेतना के सिद्ध साधक हैं त्रिलोचन। त्रिलोचन ने अपनी कविता में जनसामान्य को बहुत तरजीह दी है और उसकी एक खास वजह है सहजता या सरलता के प्रति उनका अपार प्रेम। उपेक्षित समझे जाने वाले लोग एवं उनकी भाषा को ही वे काव्य का विषय

ISSN 2454-2725 www.jankritipatrika.in
जनकृति अंतरराष्ट्रीय पत्रिका/ Jankriti International Magazine (बहुभाषी अंतरराष्ट्रीय मासिक पत्रिका/Multilingual International Monthly Magazine)

ISSN 2454-2725
www.jankritipatrika.in

बनाते हैं उन्हीं को आदर देते हैं–''रस जीवन का जीवन से खींचा दिए हृदय के भाव, उपेक्षित थी जो भाषा उसको आदर दिया।''[11]

जन सामान्य एवं उसकी बोली बानी से त्रिलोचन को अपार लगाव था– 'मैं प्रायः सुनता था वह भाषा, कोई नहीं जिसे सुन पाता'[12] और उनका यह लगाव मात्र रचनात्मक स्तर पर ही हो ऐसा नहीं है बल्कि इनसे कवि का रक्तसम्बंध है–''मोहक, सपने, मुझे नहीं उलझा पाते हैं, मैं विलास का

प्रेमी कभी नहीं था, जब देखा तब केवल जीवन देखा, /
धूल और मिट्टी से आया था, रक्त के कणों में यह सम्बन्ध
समाया था।''[13]

त्रिलोचन का आर्थिक चिन्तन औद्योगीकरण के विरुद्ध है। वे चीनी नहीं गुड़ पंसद करने वाले कवि हैं। गुड़ खाने एवं बनाने वाले कवि हैं। इस सन्दर्भ में उनके विचार उन्हीं के मुख से –''अब जैसे ईख को पेरना लोहे के कोल्हू में धीरे–धीरे, पहले पत्थर का कोल्हू चलता था और गंडेरियां काट कर उसमें डाल दी जाती थी। इसमें संदेह नहीं की यह जो चीज थी– ईख के रस में जो स्वाद था पहले, वह कोल्हू वह जो लोहे का था उसमें वह स्वाद नहीं था, लेकिन यह है कि कुछ आसानी रहे दूसरी बात यह है कि ईखों को तोला जाता था। तोलने वाला जो होता था वह तीन–चार दिन तक इंतजार करा देता था। खुद मैंने, जो ईख अपनी ले जाते थे मिलों में बेचने, उनसे कहा कि गुड़ बनाओ। यह जरूर है कि आसपास के रहने वालों पर सरकार रौब डालती है, गुड़ खरीदो। तो मैंने उनको बताया कि गुड़ बनाओ। और गुड़ अधिक सस्ता नहीं होता, करीब उसी के बराबर होता है जैसे चीनी। लेकिन चीनी हानिकर होती है स्वास्थ्य के लिए इसे समझाइए लोगों को, लोग समझते नहीं।''[14]

त्रिलोचन के संबंध में यह पूर्ण सत्य है कि वे विचारतः मार्क्सवादी हैं और उनमें मार्क्सवादी संस्कारों का अभ्युदय होता है 1936 में, जब वे एक दक्षिणी व्यक्ति की सहायता से आगरे में मार्क्सवादी साहित्य पढ़ते हैं। पार्टी के मेंबर कभी नहीं रहे किन्तु विचार एवं कार्य के स्तर पर सदैव सम्बद्ध रहे। पारिवारिक दायित्वों के निर्वहन एवं पढ़ाई के प्रति प्रेम के कारण पार्टी के सक्रिय सदस्य न बन सके। मार्क्सवाद से जुड़ाव के कारण लोकजन से जुड़े, लोक मन को जाना समझा बूझा और लोक जन को उन्नति के गुर सिखाए, क्रियाषीलता एवं कर्मषीलता के पाठ पढ़ाए– ''रोजी हाथ पांव मारा जाय तब/चलती है नियम से''[15] खाली हाथ पर हाथ धरे बैठने का विरोध करते हुए वे कहते हैं ''खाली पेट भरूँ कुछ काम करूँ कि चुप मरूँ''[16] जन–सामान्य

ISSN 2454-2725 www.jankritipatrika.in
जनकृति अंतरराष्ट्रीय पत्रिका/ Jankriti International Magazine (बहुभाषी अंतरराष्ट्रीय मासिक पत्रिका/Multilingual International Monthly Magazine)

ISSN 2454-2725
www.jankritipatrika.in

के प्रति समर्पण उनको अन्य कवियों से अलग करता है। जन सामान्य को उनके कर्तव्य पथ पर प्रगति करने को, आगे बढ़ने को त्रिलोचन सदैव प्रेरित करते रहते हैं– 'अभी सामने सारा रस्ता पड़ा हुआ है/चमड़ा छिला चोट काफी/घुटनों को आई मलकर पांव झटक दे चल फिर नए भाव भर, मानव है तू अपने पैरों खड़ा हुआ है।'[17] दीनोन्नति में त्रिलोचन आद्यन्त संलग्न रहे। उनके मन की हीन भावना एवं कुण्ठा को वे निकाल कर उसके स्थान पर आत्म सम्मान की स्थापना करते हैं। दीनों से उनका स्नेह देखने योग्य है जब वे कहते हैं–

'दीनता देह से लिपटी है मन तो अदीन है/नेत्र सामना करते हैं पथ पर कोई भी आए।[18]

त्रिलोचन के काव्य का अधिकांष किसान संस्कृति एवं लोकसंस्कृति से समृद्ध है। नगरीय सभ्यता से जुड़ी कुछ ही कविताएं हैं उसमें भी नगरीय सभ्यता की वास्तविक समस्याओं पर ही प्रकाष डाला गया है। जैसे–

''महानगर के अपने मजे हैं/गर्मी में पानी हाय–हाय/बिजली हाय–हाय/ गन्दगी हाय–हाय/हवा भी ऐसी/साँस लेने का क्या उपाय।''[19]

इसके अतिरिक्त शहरों की एक और कड़वी हकीकत का बयान उनके मुख से सुनिए–

''आज कल का ढंग ही विचित्र है/हमारे घर/ जितने ही निकट निकट होते हैं उतने ही दूर दूर हमारे मन होते हैं।''[20]

कवि त्रिलोचन की बौद्धिक ऊर्जा की टकराहट पष्चिम सभ्यता से होती ही रहती है। महेष चन्द्र पुनेठा के शब्दों में– ''चम्पा काले–काले अच्छर नहीं चीन्हती' कविता में जब चम्पा कहती है 'कलकत्ता मैं कभी न जाने दूँगी/ कलकत्ते पर बजर गिरे।' यहाँ अपनी जमीन के प्रति प्रेम तो है ही, साथ पष्चिम की अंध औद्योगिकता का विरोध भी। यह उस केन्द्रीकृत औद्योगीकरण तथा शहरीकरण की आलोचना है जो पष्चिम की देन है। जिसके कारण लोगों को अपना गाँव या कस्बा छोड़ने के लिए मजबूर होना पड़ता है। गांधी जी की उस विचारधारा का प्रकारान्तर से समर्थन है जिसमें वे स्वावलम्बी ग्राम्य अर्थ व्यवस्था के पक्ष तथा विवेकहीन मषीनीकरण के विरोध की बात करते हैं। यदि गांव स्वावलम्बी होंगे तो स्वाभाविक है घर से दूर जाने का जो दंष है उसे नहीं भोगना पड़ेगा। दरअसल इस कविता की केन्द्रीय अन्तर्वस्तु यही है।''[21]

जैसा कि कहा जा चुका है कि त्रिलोचन अलग ढर्रे पर चलने वाले कवि हैं और इससे होने वाली हानि को वे अनदेखाकर आगे बढ़ते हैं– ''डर नहीं है/हँसा जाऊँगा''[22] और वे अपने पग को किसानों, मजदूरों, दीनों, बेसहारों के पथ पर आगे बढ़ाते हैं और उन्हें उठाते हैं–

'उठ किसान ओ, उठ किसान ओ/बादल घिर आए हैं

ISSN 2454-2725 www.jankritipatrika.in
जनकृति अंतरराष्ट्रीय पत्रिका/ Jankriti International Magazine (बहुभाषी अंतरराष्ट्रीय मासिक पत्रिका/Multilingual International Monthly Magazine)

ISSN 2454-2725
www.jankritipatrika.in

तेरे हरे भरे सावन के साथी ये आये हैं।'[23]

मजदूरों के महत्त्व को वे भलीभाँति समझते हैं–

''मानव की सभ्यता/तुम्हारे ही खुरदरे हाथों में नया रूप पाती है।''[24]

दीन जन के स्वरूप में वे ईष्वर को निहारते हुए दुखित होते हैं–

'दीन हीन छवि क्षीण और व्याकुल ईष्वर को
आज सड़क पर हाथ पसारे मैं ने पाया।'[25]

दुखी एवं बेसहारों का दुख वे देख नहीं पाते हैं–

'औरों का दुख दर्द वह नहीं सह पाता है
यथाषक्ति जितना बनता है कर जाता है।'[26]

''दुख से दबे हुए मानव, आ आ मैं ले लूँ
तेरा सब दुख''।[27]

वस्तुतः त्रिलोचन का समूचा काव्य ही जन सामान्य के प्रति समर्पित है। उनके दुख–सुख, रहन–सहन, पर त्रिलोचन पूरा ध्यान देते हैं और इन्हीं लोगों को वे अपनी कविता का विषय वस्तु बनाते हैं।

त्रिलोचन के आर्थिक चिन्तन का स्वरूप भी यथार्थवाद के ही धरातल से उठता दीखता है, आर्थिक विषमताओं का यथार्थ चित्रण उसे वैसी ही सहजता से वर्णित करना कवि त्रिलोचन के काव्य का प्रमुख गुण है। वे धन सम्पदा को जीवन की आवष्यकता अवष्य मानते हैं क्योंकि आज के अर्थ प्रधान युग में आजीविका का साधन आवष्यक है अन्यथा जीवन निर्वाह बाधित हो जायेगा और इसके लिए त्रिलोचन व्यक्ति को सार्थक प्रयास करने को कहते हैं। वे रचनात्मक एवं व्यक्तिगत रूप से लोगों को कर्म का, परिश्रम का, मेहनत का महत्त्व बताते रहे हैं और उसे रोजी रोटी के लिए प्रयास करने को भी कहते हैं–

'रोजी हाथ पांव मारा जाय तब/चलती है नियम से'[28]

किन्तु धन को वे जीवन निर्वाह के लिए ही आवष्यक मानते हैं यही धन जब आधिक्य से व्यक्ति में धनोन्माद उत्पन्न करे; उन्मादित व्यक्ति, व्यक्ति को व्यक्ति न समझे तो उसे सचेत करते हुए कहते हैं–''मद जीवन का, यौवन का, धन का सब कुछ धोखा था मन का।''[29]

त्रिलोचन जन कवि हैं, वे जन को सर्वोपरि मानते हैं। जन के कल्याण के निमित्त वे यथाषक्ति यथा संभव प्रयास भी करते हैं उनके पास निःसंदेह धन नहीं था 'बेषक दाम नहीं था

ISSN 2454-2725 www.jankritipatrika.in
जनकृति अंतरराष्ट्रीय पत्रिका/ Jankriti International Magazine (बहुभाषी अंतरराष्ट्रीय मासिक पत्रिका/Multilingual International Monthly Magazine)

ISSN 2454-2725
www.jankritipatrika.in

उनकी अंटी में..... धन घाम नहीं था।'[30] और वे धन के उपासक भी नहीं थे। अपने जीवन की अभावमयता की कहानी उन्हीं की जुबानी सुनिए–'बिस्तरा है न चारपाई है। जिन्दगी खूब हमने पाई है'[31] किन्तु अपनी अभावमयता उन्हें विचलित नहीं कर पाती। अपनी अभावमय जिन्दगी को वे अपने अदम्य साहस, शौर्य एवं अथक परिश्रम से करारा जवाब देते हैं। वे चुपचाप बैठने वाले कवि नहीं है और न ही वे अपने पाठकों को, अपने लोगों को खाली बैठे देखना ही पसंद करते हैं–'खाली पेट भरूँ कुछ काम करूँ कि चुप मरूँ'।[32]

त्रिलोचन की कविता अपने पाठकों को क्रियाषील बनाए रखती है साथ ही साथ सजग एवं जागरूक भी। वे अपनी कविताओं के माध्यम से लोगों को अपनी अन्तर्दृष्टि से, अपने मनोभावों से, अपनी संवेदनाओं से, अपनी विचारधाराओं से अवगत कराते चलते हैं चूँकि वे धरती के कवि हैं इस लिए उन्हें धरती के कण कण से अनुराग होना स्वाभाविक ही है किन्तु मिट्टी के सापेक्ष सोने को महत्त्वहीन सिद्ध करना, उसे नगण्य, कमतर समझना वस्तुतः उनके धरती और मिट्टी के प्रति अपूर्व अनुराग एवं प्रगाढ़ प्रेम को ही द्योतित करता है। अपने पाठकों को मिट्टी के महत्त्व को समझाते हुए वे कहते हैं–'यह जरा हलका है, कुछ कुछ सुगंध जैसा है/सोना हर्गिज नहीं, मिट्टी का डला है कोई,[33]

त्रिलोचन सोने के सापेक्ष मिट्टी को महत्त्व प्रदान करने वाले कवि हैं उन्हें मिट्टी के कण कण से बेहद लगाव है। वे सोने का सम्मान करके मिट्टी का अपमान नहीं करना चाहते। वे जानते हैं कि प्रत्यक्ष रूप से सोने का सम्मान करने से उनके द्वारा परोक्ष रूप से मिट्टी का अपमान हो जायेगा जो उन्हें बर्दाष्त नहीं–'जो भी कंचन का करते हैं सम्मान, उन्हीं के सिर चढ़ता है मिट्टी का अपमान'।[34]

त्रिलोचन माटी को माथे लगाने वाले कवि हैं उन्हें जितना लगाव अपनी धरती से है, उसके कण कण से है मिट्टी से जुड़े उन तमाम खेतिहर किसानों एवं मजदूरों से है, दीन हीन क्षवि क्षीण व्यक्तियों से है उतना किसी और से नहीं है। वे धन, सम्पत्ति वैभव, की कामना नहीं करते हैं। उन्हें जिन्दगी के मोहक सपने अपनी ओर आकृष्ट नहीं कर पाते हैं–'मोहक सपने/मुझे नहीं उलझा पाते हैं मैं विलास का/प्रेमी कभी नहीं था।'[35]

वस्तुतः त्रिलोचन विलासानुरागी न होकर श्रमानुरागी हैं वे कर्मयोगी साधक की ही भाँति कर्मों की भाषा में उत्तर देते हैं–

'उत्तर जो देना हो/अब इस पृथिवी को दे/कर्मों की भाषा में'[36]

ISSN 2454-2725 www.jankritipatrika.in
जनकृति अंतरराष्ट्रीय पत्रिका/ Jankriti International Magazine (बहुभाषी अंतरराष्ट्रीय मासिक पत्रिका/Multilingual International Monthly Magazine)

ISSN 2454-2725
www.jankritipatrika.in

वे लोगों को कमाए–गँवाए की चिन्ता छोड़कर कर्म की अबाधता एवं निरन्तरता पर बल देने को कहते हैं–'जो कमाया जो गँवाया/छोड़ उसका छोड़ सपना/और कर बल'[37]

त्रिलोचन का काव्य हमें कुछ और करने का बल देने वाला काव्य है इनका काव्य हमें स्वप्न एवं कल्पना लोक से नहीं अपितु कर्म लोक से इसी जगत से जोड़ने वाला काव्य है।किसान कवि त्रिलोचन प्रकृति को ही अपनी पूँजी मानने वाले कवि हैं जैसे किसान को अपने लहलहाते हुए खेतों, फले फूले बाग बगीचों को देखकर अपार हर्षानुभूति होती है उसका मन खिला खिला हरा भरा रहता है ठीक वैसे ही कवि को प्रकृति की सुषमा, उसकी शोभा, उसकी सौंदर्यश्री से अभूतपूर्व आनंद की प्राप्ति होती है। वे आधुनिकीकरण के कारण हो रहे प्राकृतिक संसाधनों के अहर्निष अंधाधुंध दोहन से चिन्तित हैं व्यथित हैं। मनुष्य द्वारा नदी के सहज प्रवाह को बाधित करके उसके दोहन को कवि सर्वथानुचित मानता है–'बाँध कर नदी को मनुष्य, दुह रहा है'।[38]

वस्तुत त्रिलोचन एक ऐसी कृषि प्रधान संस्कृति के प्रबल पक्षधर हैं जहां किसानों को उनके द्वारा उत्पादित फसलों का उचित मूल्य उन्हें प्राप्त हो। वे किसानों की दुरवस्था से क्षुब्ध होते हैं। वे ऐसी पूँजीवादी मानसिकता से त्रस्त व्यवस्था जहाँ किसान श्रम तो भरपूर करते हैं लेकिन उन्हें आर्थिक विपन्नता पग पग पर विचलित करती रहती है। जी तोड़ मेहनत करने पर भी दो जून की रोटी नसीब नहीं है, का तीव्र प्रतिकार करते हैं। कृषि के प्राचीन तरीके भी इन कृषकों की दुरवस्था को दिनोंदिन बढ़ाते चले जा रहें हैं। साम्राज्यवादी एवं सामन्ती व्यवस्था के समर्थक अंग्रेजों ने यहाँ के प्राचीन घरेलू उद्योग धन्धों के स्थान पर पूँजी प्रधान नवीन उद्योग धन्धों की स्थापना की; उत्पादन की समस्त शक्तियाँ पूँजीवादी व्यवस्था पर निर्भर हो गई। लोग लगातार उसके शोषण चक्र के षिकार होते रहे। मँहगी कृषि व्यवस्था ने उन्हें कृषक से मजदूर में परिवर्तित कर दिया। स्वतंत्र भारत में भी स्थितियों में कुछ सुधार तो आया लेकिन कालान्तर में अंग्रेजों द्वारा स्थापित पद्धतियों का ही प्रसार किया गया। त्रिलोचन कृषकों की समस्याओं से भली भाँति परिचित साहित्यकार रहे हैं क्योंकि वे स्वयं उसी वर्ग के जीवन को प्रत्यक्षतः भोग चुके हैं। अभावों से ही वे संत्रस्त होते रहे हैं लेकिन साथ ही साथ यही अभाव उनके काव्य एवं जीवन का प्रेरक तत्त्व भी रहा है। त्रिलोचन तो स्वयं को ऐसे वर्गों का ऐसे ही लोगों का प्रतिनिधि कवि घोषित करते हैं जो निरन्तर अभावों को झेलता रहा है–

'उस जनपद का कवि हूँ जो भूखा दूखा है/नंगा है अनजान है कला नहीं जानता/कैसी होती है क्या है वह नहीं मानता/कविता कुछ भी दे सकती है।'[39]

यहाँ गरीबी और अभाव तो कृषकों की चेतना से एकाकार है। आर्थिक विपन्नता से मुक्ति कहाँ? दीनता तो उनके देह से ही लिपटी हुई प्रतीत होती है। 'दीनता देह से ही लिपटी है मन

ISSN 2454-2725 www.jankritipatrika.in
जनकृति अंतरराष्ट्रीय पत्रिका/ Jankriti International Magazine (बहुभाषी अंतरराष्ट्रीय मासिक पत्रिका/Multilingual International Monthly Magazine)

ISSN 2454-2725
www.jankritipatrika.in

तो अदीन है'[40] स्वयं के जीवन एवं कृषक जीवन का यह अभाव ही उनकी आर्थिक चेतना की निर्मिति का प्रधान कारक रहा है। वस्तुतः वे एक सच्चे भोक्ता कवि हैं। अभावपूर्ण जीवन भी उनकी रचनात्मक शक्ति को कुन्द न कर सका वरन् इन अभावों ने ही उनकी जीवनी शक्ति को, उनकी रचनात्मक षक्ति को उत्तरोत्तर वर्द्धमान, वृद्धिमान ही बनाया है। वस्तुतः देखा जाय तो त्रिलोचन की आर्थिक चेतना प्रेमचन्द की यथार्थवादी एवं शुक्ल जी के लोकमंगल की अवधारणा से ही साम्य रखती है। वे ऐसे प्रगतिषील कवि रहे हैं जिन्होंने आर्थिक रूप से विपन्न कृषकों के जीवन को अपनी काव्य वस्तु का वर्ण्य विषय बनाया है। कृषक जीवन के शायद ही कोई ऐसे पक्ष रहे हों जो उनकी सजग कवि दृष्टि से छूट सके हों। वे कृषकों के जीवन की समग्रता के रचनाकार हैं। कृषकों के जीवन में अर्थ का अभाव सदैव विद्यमान रहने वाला एक शाष्वत सत्य है, यह हमारी सामाजिक व्यवस्था की विडम्बना भी है। ''कुछ कवि किसान को एक धारणा या विचार मात्र मानते हैं और कविता में उस पर बहस करते हैं। त्रिलोचन किसानों को जीते जागते मानव समुदाय के रूप में देखते हैं किसानों में आर्थिक स्थिति के अनुसार अनेक स्तर हैं कई तरह के भेद हैं। त्रिलोचन की कविता में सबसे अधिक खेतिहर मजदूर आते हैं और उन खेतिहर मजदूरों में भी स्त्रियों की जीवन दषा पर उनका ध्यान अधिक जाता है। उनकी कविताओं में जो कुछ चरित्र हैं वे सब ग्रामीण कारीगर खेतिहर मजदूर और स्त्रियाँ हैं। नगई महरा, भोरई केवट, मंगल, निरहू, भिखरिया, अवतरिया, चम्पा, सोना और सुकनी आदि ऐसे ही चरित्र हैं। इन चरित्रों के माध्यम से गाँव में सबसे कठिन जिन्दगी जीने वाले लोगों के ठोस अनुभवों की एक दुनिया साकार रूप में हमारे सामने आती है। ऐसे चरित्रों को कविता में ले जाने वाले कवि की सामाजिक चेतना और वर्ग–दृष्टि के बारे में अलग से कुछ कहना अनावष्यक है।'[41] त्रिलोचन की आर्थिक दृष्टि के निर्माण में कृषक जीवन के यथार्थ ने ही प्रमुख भूमिका निभाई है। यही वह आधार है जो त्रिलोचन की कविताओं में स्थान–स्थान पर अभिव्यंजित है। यहाँ अपनी दैनिक जरूरतों के लिए, परिवार के भरण–पोषण के लिए, अपनी अस्मिता और जीवन संरक्षा के लिए प्रतिपल संघर्ष करता हुआ किसान है जो अथक परिश्रम के बावजूद भी आर्थिक समस्याओं के जाल में दिनोंदिन फंसता चला जा रहा है। उसकी समस्याएं न केवल यथावत बनी हुई हैं बल्कि समय पर उसमें और भी इजाफा होता चला जाता है। अनवरत् संघर्ष करने पर भी उसकी अण्टी में दाम न होना आर्थिक बिडम्बना नहीं तो और क्या है–'बेषक दाम नहीं था उसकी अंटी में'[42] त्रिलोचन के काव्य में ऐसे ही दृष्यों की अनेक छायाएं गतिषील दिखाई देंगी। जो अपनी विपन्नता के निवारणार्थ अथकश्रम करते हैं लेकिन उसका कोई हल नहीं निकल पाता क्योंकि आर्थिक पक्ष पर अनर्थकारी शक्तियों

ISSN 2454-2725 www.jankritipatrika.in
जनकृति अंतरराष्ट्रीय पत्रिका/ Jankriti International Magazine (बहुभाषी अंतरराष्ट्रीय मासिक पत्रिका/Multilingual International Monthly Magazine)

ISSN 2454-2725
www.jankritipatrika.in

का अधिकार हो गया है। सामान्य जन का जीवन तो जीवन रस से कोसों दूर है उनका यह जीवन तो मृत्यु से भी भयावह है। वे ऐसी व्यवस्था पर बराबर प्रहार करते चलते हैं जहाँ श्रमषील विपन्न है और श्रमहीन समस्त सुविधाओं के उपभोक्ता। ऐसा जीवन भी कोई जीवन है जिसमें जीवन की मूलभूत चीजें बिस्तरा और चारपाई भी न हो–'बिस्तरा है न चारपाई है/ जिन्दगी हमने खूब पाई है।[43]

त्रिलोचन के काव्य में आर्थिक विपन्नता का बड़ा ही करुणार्द्र और यथार्थ चित्रण हुआ है। उन्होंने कृषक जीवन की आर्थिक विपन्नता के जितने गहरे चित्र अंकित किए हैं उतना उपन्यास जगत में प्रेमचंद्र और काव्य जगत में निराला को छोड़कर अन्यत्र कहीं भी दुर्लभ है। इन अर्थों में वे निराला और प्रेमचन्द्र की परम्परा के ही कवि अथवा रचनाकार कहे जा सकते हैं। द्वितीय विष्व युद्ध की भयंकरता एवं गरीब जन सामान्य का शोषण उनकी चेतना को बराबर उद्वेलित करता रहा है। 'भोरई केवट के घर' कविता की कुछ पंक्तियाँ अवलोकनीय हैं– 'भीतर की प्राणवायु सब बाहर निकाल कर/एक बात उसने कही/जीवन की पीड़ा भरी/बाबू इस मँहगी के मारे किसी तरह अब तो और नहीं जिया जाता/और कब तक चलेगी लड़ाई यह'।[44]

'अब तो जिया नहीं जाता' इस वाक्य से आर्थिक विपन्नता का बड़ा भयावह बिम्ब उभरता है जो हमारी चेतना को उद्वेलित किए बिना नहीं रहता। मँहगाई और गरीबी में पिसती जनता का समूचा जीवन बिम्ब आँखों के आगे कौंध जाता है। त्रिलोचन की 'नगई महरा' शीर्षक कविता के नगई कहार की आर्थिक विपन्नता पर भी गहरा क्षोभ व्यक्त किया गया है। समूचा परिवार जी तोड़ मेहनत करता है लेकिन तब भी उसे दोनों वक्त का भोजन नसीब नहीं–''सूखे पत्ते वहाँ बहुत सारे थे/नगई ने भार बैठा दिया/दिन में साँस मिलने पर/भाड़ को जगाता था/ दूर–दूर से भुजाने वाले आते थे नगई ने गाँव के/तीन–चार घरों का पानी थाम लिया था/ कभी वह भरता कभी घरनी भरती थी/पूरा परिवार मैंने देखा/पैरों पैरों है।''[45]

प्रेमचन्द के होरी की मनःस्थिति, जीवन–स्थिति का काव्य संस्करण है त्रिलोचन की 'नगई महरा' और 'भोरई केवट' शीर्षक कविताएं। लगभग यही भाववोध त्रिलोचन की 'परदेसी के नाम पत्र' शीर्षक कविता में भी व्यक्त हुआ है। आर्थिक विपन्नता से ऊबकर कैसे एक किसान शहर में पलायन करके मजदूरी के लिए दर–दर भटकता है। मषीनीकरण की पूँजीवादी व्यवस्था ने उसे इतना मजबूर और लाचार बना दिया है कि वह अपनों की याद को ही भुला बैठा है। अर्थोपार्जन की अक्षमता उसे बराबर व्यथित करती रहती है और इसी भावबोध से सम्पृक्त है 'ताप के ताए हुए दिन' की 'आरर डाल' शीर्षक कविता। कुछ पंक्तियाँ दर्षनीय हैं–

ISSN 2454-2725 www.jankritipatrika.in
जनकृति अंतरराष्ट्रीय पत्रिका/ Jankriti International Magazine (बहुभाषी अंतरराष्ट्रीय मासिक पत्रिका/Multilingual International Monthly Magazine)

ISSN 2454-2725
www.jankritipatrika.in

सचुमच इधर तुम्हारी याद तो नहीं आई/झूठ क्या कहूँ। पूरे दिन मषीन पर खटना/बासे पर आकर पड़ जाना और कमाई/का हिसाब जोड़ना बराबर चित्त उचटना।[46]

''परदेषी मजदूर के पत्र में उसकी कठिन जिन्दगी और मन की दषाओं को जिस कुषलता से प्रकट किया गया है वह केवल त्रिलोचन ही कर सकते हैं। यह उनकी यथार्थवादी कला का एक उदाहरण है। आधुनिकतावाद के दौर में मध्यवर्गीय व्यक्ति के परायेपन को कविता और कहानी में फेटा गया है, लेकिन मजदूर का परायापन किसी रचना में दिखाई नहीं दिया।''[47]

वस्तुतः त्रिलोचन इस कविता के माध्यम से यह दिखाना चाहते हैं कि वर्तमानकालीन पूँजीवादी व्यवस्था ने कैसे एक सामान्य किसान को मजदूर बना दिया है और मजदूर को भी रोजी–रोटी के नाम पर दर–दर भटकना पड़ रहा है। मजदूरी के भी सारे अवसर उससे छीन लिए गए हैं। इंसानों का स्थान मषीनों ने ले लिया है। पूँजीवादी व्यवस्था के इस मषीनीकरण युग में मषीनों ने मजदूरों का विस्थापन कर दिया है। उनकी श्रमषक्ति को छीन लिया है। इस व्यवस्था ने उन्हें अपंग बना दिया है। त्रिलोचन इस पूँजीवादी व्यवस्था को समाज के लिए नितान्त घातक समझते हैं। समाज को मषीनों ने अपने विषदन्तों द्वारा विषमय बना दिया है जो समाज के समूचे तन्त्र को अव्यवस्थित बना रहा है। त्रिलोचन ऐसी व्यवस्था का खात्मा चाहते हैं। उनका मानना है कि इस पूँजीवादी विष का शमन अमृत समाजवाद ही कर सकता है। पूँजीवादी व्यवस्था ने जहाँ जनता के हाथों से सुख की रोटी तक छीन ली है जो उनकी एक कविता में भी अवलोकनीय है–

''हाथों के दिन आयेंगे/कब तक आयेंगे।/यह तो कोई नहीं बताता/जहाँ कहीं भी देखा अब/तक डरने वाले मिलते हैं, सुख की रोटी वे कब खाएंगे।/सुख से कब सोएंगे उसको कब पायेंगे।/जिसको पाने की इच्छा है हरने वाले हर हर/कर अपना घर भरने वाले/कहाँ नहीं हैं।/भाषा किसको चिन्ता है उनके दुखड़े की।''[48]

त्रिलोचन अपनी अनेक कविताओं में समाज को इस पूँजीवादी व्यवस्था के खतरों के प्रति आगाह करते चलते हैं। वे जानते हैं कि यह व्यवस्था दिनोंदिन देष को खोखला बनाती चली जा रही है लोगों के रोजगार को दिनोंदिन छीनती जा रही हैं। समाज में अमीरी और गरीबी की खाई को चौड़ी करती जा रही है। पूँजी का संकेन्द्रीकरण होता जा रहा है। अमीर लोग और अमीर देष और अधिक अमीर होते जा रहे हैं जबकि गरीब और गरीब देष अपनी पूर्व प्रचलित उत्पादन शक्तियों को खो करके मषीनों पर निर्भर हो करके दिनोंदिन कंगाल और गरीब होते जा रहे हैं। वस्तुतः पूँजी गरीबों के हक को मार करके ही बनती है तो त्रिलोचन ऐसी व्यवस्था के समर्थक कैसे हो सकते हैं। त्रिलोचन तो सच्चे अर्थों में समाजवाद के उपासक हैं एक ऐसे समाज के जहाँ उत्पादन की शक्तियों पर जनता का नियंत्रण हो और जनता ही उत्पादित वस्तुओं का भोक्ता भी हो। समाज के प्रत्येक व्यक्ति विषेष की जरूरतों की पूर्ति हो सके, प्रकृति की प्रत्येक वस्तु व्यक्ति

ISSN 2454-2725 www.jankritipatrika.in
जनकृति अंतरराष्ट्रीय पत्रिका/ Jankriti International Magazine (बहुभाषी अंतरराष्ट्रीय मासिक पत्रिका/Multilingual International Monthly Magazine)

ISSN 2454-2725
www.jankritipatrika.in

विषेष की न हो करके समूचे समाज की हो। प्राणिमात्र का उस पर अधिकार हो। इस जर्जर होते हुए समाज को समाजवादी व्यवस्था पर आधारित आर्थिक नीति ही उबार सकती हैं। 'ईष्वर की मृत्यु' षीर्षक कविता की पंक्तियाँ इसका प्रबल साक्ष्य प्रस्तुत करती हैं–मृत्यु हो चुकी है ईष्वर की नया आदमी /अब इच्छानुसार करता है काम, क्या रहा/जो उसने न किया हो कोई भी कहीं कमी/नहीं रही है ठाटबाट का महल है ढहा/सामंती युग का स्वाभाविक मौत न पाई/युग युग के गंभीर नरक को पाट सकेगा।[49]

त्रिलोचन यह बखूबी जानते हैं कि वर्तमान समय में समाज के सारे तत्त्व आर्थिक शक्तियों से ही नियंत्रित और परिचालित होते हैं। यह मध्य युग नहीं है जहाँ संतों और भक्तों के द्वारा पुरुषार्थ चतुष्टय से अर्थ और काम को निकाल कर फेंक दिया जाय वरन् यह अर्थ प्रधान युग है। आज अर्थ की उपेक्षा करके कोई भी समाज अथवा देष न तो दीर्घजीवी हो सकता है और न व्यवस्थित। आर्थिक रूप से आत्मनिर्भरता ही वास्तविक स्वतन्त्रता की स्थापना कर सकती है। त्रिलोचन की कविता हमें हमेषा सजग करती रहती है कि हम आर्थिक रूप से पराश्रित रहेंगे तो हम अपनी स्वाधीनता ही दॉव पर लगा देंगे। उनकी कविताएं हममें आषा, अभिलाषा, उत्साह का तो संचार करती ही हैं साथ ही साथ हमें पूँजीवादी विष्व बाजारवाद के खतरों के प्रति भी आगाह करती रहती हैं–जानते हैं ये कि पूँजीवाद के उपहार क्या हैं/ और पूँजीपति अभीप्सित विष्व के बाजार क्या हैं /गृद्ध नेत्रों से कहाँ साम्राज्य क्या क्या देखता है /कर रहा शव विष्वजीवन और अत्याचार क्या है/मुक्ति के बनकर सिपाही शूर अपराजेय तेरेएक निष्चय और अभिलाषा लिए घर आ रहे हैंआज वे संगीन कंधों पर रखे घर आ रहे हैं।[50]

यह तो त्रिलोचन की आर्थिक चेतना का एक वैष्विक पहलू था जहाँ वे वैष्विक पूँजीवाद के चंगुल से राष्ट्र को मुक्त कराने की आकांक्षा अभिव्यंजित करते हैं। त्रिलोचन की ऐसी अनेक कविताएं भी हैं जो आत्मचरितात्मक प्रतीत होती हैं लेकिन इन आत्मचरितात्मक कविताओं में भी उनकी गहरी आर्थिक चेतना दृष्टिगोचर होती है। यद्यपि वे व्यक्तिगत रूप से धन के पीछे कभी नहीं पड़े। वे अपने काव्य में हमेषा मानवीय मूल्यों को प्रधानता देते रहे हैं लेकिन साथ ही साथ वे यह भी जानते हैं कि व्यक्ति समाज एवं राष्ट्र के उन्नयन के लिए आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होना परम आवष्यक है। उनका काव्य जहाँ हमें व्यक्तिगत रूप से अर्थ संचय के प्रति निरपेक्ष बनाता है वहीं राष्ट्र के प्रति पूँजीवादी शक्तियों की शोषणकारी आर्थिक नीतियों से मुक्त बनाने का भी स्थान–स्थान पर संकेत देता है। उनकी कविताओं में निहित उनकी आर्थिक चेतना से यह स्पष्टतः परिलक्षित होता है कि वे अर्थतन्त्र पर समूचे समाज के नियंत्रण की पक्षधरता की हिमायत

ISSN 2454-2725 www.jankritipatrika.in
जनकृति अंतरराष्ट्रीय पत्रिका/ Jankriti International Magazine (बहुभाषी अंतरराष्ट्रीय मासिक पत्रिका/Multilingual International Monthly Magazine)

ISSN 2454-2725
www.jankritipatrika.in

करते हैं। अब हम त्रिलोचन की आत्मचरितात्मक कविताओं में निहित उनकी आर्थिक चेतना पर प्रकाष डालने का उपक्रम करते हैं क्योंकि इन आत्मचरितात्मक कविताओं में दृष्टिगोचर होने वाला अर्थाभाव सिर्फ त्रिलोचन का नहीं है बल्कि उस समूची कृषि प्रधान भारतीय जनता का अर्थाभाव है। वे 'भीख माँगते' शीर्षक कविता में भिक्षुक व्यक्ति की मनोदषा को चित्रित करते हुए उसकी भीख माँगने की मजबूरी को सामने लाते हैं–'छूछा पेट काम तो नहीं करेगा...../आप ही कहें क्या करूँ खाली पेट भरूँ /कुछ काम करूँ कि चुप मरूँ।'[51]

वस्तुतः त्रिलोचन का काव्य कर्म का संदेष देने वाला काव्य है जो हाथ पर हाथ धरे बैठने का नहीं अपितु कुछ न कुछ करने का संदेष देता है। वे कर्म के ही बीज बोते दिखते हैं तथा लोगों को उन्नति एवं वृद्धि का मूल मंत्र भी बताते हैं–वृद्धि अकायमान केवल उसकी होती है/नहीं चेतना जिस की पलभर को सोती है।[52]

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. ताप के ताए हुए दिन – त्रिलोचन, पृ. 79
2. उस जनपद का कवि हूँ – त्रिलोचन पृ. 17
3. उस जनपद का कवि हूँ – त्रिलोचन, पृ. 93
4. गुलाब और बुलबुल – त्रिलोचन, पृ. 14
5. ताप के ताए हुए दिन – चिलोचन पृ. 56
6. धरती – त्रिलोचन, पृ. 66
7. आजकल – अप्रैल 2010, पृ. 10
8. गुलाब और बुलबुल – त्रिलोचन, पृ. 63
9. ताप के ताए हुए दिन – त्रिलोचन, पृ. 40
10. शब्द – त्रिलोचन, पृ. 35
11. उस जनपद का कवि हूँ – त्रिलोचन, पृ. 116
12. उस जनपद का कवि हूँ – त्रिलोचन, पृ. 22
13. उस जनपद का कवि हूँ – त्रिलोचन, पृ. 88
14. आजकल – अप्रैल 2010, पृ. 21
15. ताप के ताए हुए दिन – त्रिलोचन, पृ. 63–64
16. उस जनपद का कवि हूँ – त्रिलोचन, पृ. 13
17. उस जनपद का कवि हूँ – त्रिलोचन, पृ. 104
18. उस जनपद का कवि हूँ – त्रिलोचन, पृ. 19

ISSN 2454-2725 www.jankritipatrika.in
जनकृति अंतरराष्ट्रीय पत्रिका/ Jankriti International Magazine (बहुभाषी अंतरराष्ट्रीय मासिक पत्रिका/Multilingual International Monthly Magazine)

ISSN 2454-2725
www.jankritipatrika.in

19. मेरा घर – त्रिलोचन, पृ. 19
20. ताप के ताए हुए दिन – त्रिलोचन, पृ. 81
21. आधार षिला 2009 – त्रिलोचन विषेषांक, पृ. 7
22. तुम्हें सौंपता हूँ – त्रिलोचन, पृ. 36
23. धरती – त्रिलोचन, पृ. 126
24. ताप के ताए हुए दिन – त्रिलोचन, पृ. 63
25. षब्द – त्रिलोचन, पृ. 74
26. ताप के ताए हुए दिन – त्रिलोचन, पृ. 49
27. शब्द – त्रिलोचन, पृ. 18
28. ताप के ताए हुए दिन – त्रिलोचन, पृ. 63–64
29. उस जनपद का कवि हूँ – त्रिलोचन, पृ. 81
30. दिगन्त – त्रिलोचन, पृ. 61
31. गुलाब और बुलबुल – त्रिलोचन, पृ. 28
32. उस जनपद का कवि हूँ – त्रिलोचन, पृ. 13
33. गुलाब और बुलबुल – त्रिलोचन पृ. 57
34. दिगन्त – त्रिलोचन, पृ. 18
35. दिगन्त – त्रिलोचन, पृ.18
36. चैती – त्रिलोचन, पृ. 10
37. प्रतिनिधि कविताएँ – सं. केदारनाथ सिंह, पृ. 84
38. ताप के ताए हुए दिन – त्रिलोचन, पृ. 15
39. उस जनपद का कवि हूँ – त्रिलोचन, पृ. 17
40. उस जनपद का कवि हूँ – त्रिलोचन, पृ. 12
41. आलोचना (अंक 32–1987) पृ. 23
42. दिगन्त – त्रिलोचन, पृ. 61
43. गुलाब और बुलबल – त्रिलोचन, पृ. 28
44. धरती – त्रिलोचन, पृ. 82
45. ताप के ताए हुए दिन – त्रिलोचन, पृ. 66–67
46. ताप के ताए हुए दिन – त्रिलोचन, पृ. 56
47. प्रगतिषील काव्य धारा और त्रिलोचन – डॉ. हरिनिवास पाण्डेय, पृ. 73
48. फूल नाम है एक – त्रिलोचन, पृ. 98

ISSN 2454-2725 www.jankritipatrika.in
जनकृति अंतरराष्ट्रीय पत्रिका/ Jankriti International Magazine (बहुभाषी अंतरराष्ट्रीय मासिक पत्रिका/Multilingual International Monthly Magazine)

ISSN 2454-2725
www.jankritipatrika.in

49. अरघान – त्रिलोचन, पृ. 76

50. तुम्हें सौंपता हूँ – त्रिलोचन, पृ. 112

51. उस जनपद का कवि हूँ – त्रिलोचन, पृ.13

52. तुम्हें सौपता हूँ – त्रिलोचन, पृ. 71

डॉ.सुभाष चन्द्र पाण्डेय
अमेठी (उ.प्र.)
9473831621

ISSN 2454-2725 www.jankritipatrika.in
जनकृति अंतरराष्ट्रीय पत्रिका/ Jankriti International Magazine (बहुभाषी अंतरराष्ट्रीय मासिक पत्रिका/Multilingual International Monthly Magazine)